जैन मूर्तिशास्त्र के सिद्धान्त

डॉ0 रामराज*

जैन धर्म में प्रतिमा पूजन की परम्परा प्राचीन काल से चली आई है। जिसनें भारतीय कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कर्म का क्षय ही इस धर्म में मोक्ष का साधन माना गया है, सम्यक ज्ञान, सम्यक चरित्र, तथा सम्यक व्यवहार ही उत्तम चरित्र के प्रतीक माने गये है। जैन धर्म में उच्चतम सिद्धज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया तथा जिनेन्द्र कहलाये। तीर्थ शब्द का अर्थ नदी भी है अतः जो संसार रूपी नदी को पार करने की क्षमता रखता हो उसे तीर्थंकर कहते हैं। मानव अपने सुख दुख का उत्तरदायी स्वयं होता है अतः इस धर्म के आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त करने वाले तीर्थंकर की ही महिमा एवं प्रतिष्ठा है क्योंकि वही ऐसी महान आत्माएं है जिसनें आध्यात्मिक रूप सें ऊँचें उठकर संसार सागर को पार कर लिया है। उन तीर्थंकरों से प्रेरणा लेने के लिये जैन धर्मावलम्बी उनकी प्रतिमाओं की पूजा अर्चना करते है।

जैन मूर्तिशास्त्र के अध्ययन के साहित्यक स्त्रोत प्राचीनतम जैन शास्त्रों अर्थात उपलब्ध अंगों और उपांगों के रूप में प्रसिद्व जैन आगम साहित्य से आरंभ होते है किन्तु जैन मूर्तिशास्त्र पर कोई स्वतंत्र आगम नही लिखा गया है। इतना अवश्य है कि सिद्वायतनो क समूचे विवरणों में जैन मूर्तियों और मंदिरों के विषय में उल्लेख मिलते हैं। इन विवरणों में स्तूप मान स्तम्भ आदि जैन पूज्य कृतियों का भी समावेश है। यह कहना कठिन है कि भगवती उवासग–दशाओं नाया धम्म कहाओं में जो अर्हतों की मूर्तियों और मन्दिरों के विषय में थोड़े से उल्लेख मिलते है वे महावीर या उनकें तत्काल पश्चात के उत्तराधिकारियों क समय के है।[1] प्राचीन पाटलिपुत्र क एक उपनगर लोहानीपुर से प्राप्त मौर्य कालीन पालिशयुक्त तीर्थंकर मूर्ति[2] जिसके अव धड़ और पैर ही बचे हैं, से स्पष्ट होता है कि कम से कम अशोक के पौत्र सम्प्रति के समय तीर्थंकर मूर्ति की पूजा का प्रचलन हो चुका था।

---

* असि0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, पी0बी0पी0जी0 कालेज, प्रतापगढ़ सिटी, प्रतापगढ़

एक महत्वपूर्ण प्रश्न तीर्थकरों क प्रतिमाओं के बारे में यह है कि इनका निर्माण कब से आरम्भ हुआ। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। जैन मुनि कान्तिसागर[3] ने जैन साहित्य की एक आर्द्र कुमार की कथा का वर्णन किया गया है कि वह अनार्य देश का रहने वाला था तथा मगध नरेश के साथ उसकी मैत्री थी, अभयकुमार ने उसे एक जिन प्रतिमा भिजवाई थी। कुछ समय पश्चात वह भारत आया तथा महावीर के पास उसे श्रमण दीक्षा ली थी। इस विषय में प्रभासपटल से डॉ0 विद्यालंकार द्वारा प्राप्त एक ताम्रपत्र[4] विशेष महत्वपूर्ण है जिसमें लिखा है कि बेवी लोन के राजा नेवुचन्दनेजार ने हैवतगिरि के नैमिनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्वार करवाया था। उन दिनो सौराष्ट्र आन्तरिक एवं वाह्य व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। अतः उसी मार्ग से आवागमन जारी था। इस बात की संभावना है कि यह विदेशी शासक इसी मार्ग से आया हो तथा अपने द्वारा पूर्ण प्रेषित जिन प्रतिमा के संस्कार के कारण उसने उसका जीर्णोद्वार[5] करवाया हो।

पूज्यमूर्ति के निर्माण का सर्वप्रथम विधान अधिक से अधिक ईसवी के आरंभ में हुआ हो सकता है जिसका संकेत मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त अनेक जैन मूर्तियों तथा विहार मे बक्सर के निकट स्थित चौसा से प्राप्त जैन कांस्य मूर्तियों के एक समूह से मिलता है।[6]

तीर्थकर मूर्तियों के मान का विधान जिन ग्रन्थों में देखने में आया है उनमें वराहमिहिर की वृहतसंहिता (58,45) सबसे प्राचीन है। मूर्ति मे अर्हतों को तरूण रूपवान, प्रशांत व्यक्तित्व से सम्पन्न और वक्ष स्थल पर श्री वत्स लांछन से युक्त दिखाना चाहिये। अजानु लबं भुजाओं वाला उनका शरीर दिगम्बर (अर्थात निग्रंथ या निर्वस्त्र) दिखाया जाना चाहिये।[7] यह विधान स्पष्टतः दिगम्बर जैन मूर्तियों के लिये है। धोती के अंकन सहित मूर्ति की पूजा वराहमिहिर के समय तक या तो आरंभ ही नही हुई थी या उस समय तक वह बहुत प्रचलित नही हुई थी स्पष्ट है कि मथुरा और चौसा से प्राप्त कोई भी कुषाण कालीन तीर्थकर मूर्ति सवस्त्र नही बनी।[8]

मानसार में दिगम्बर मूर्तियों का वर्णन है, परन्तु नग्नता के अतिरिक्त शेष सभी लक्षण श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो प्रकार की मूर्तियों के एक समान है। जिन मूर्ति के मुख्य लक्षण वही है अर्थात लम्बी भुआएं रूपवान और तरूण आकृति ध्यान मग्न नासाग्र दृष्टि और वक्ष स्थल पर भी वत्स लांछन। वसुनंदी सैद्धान्तिक ने अपने प्रतिष्ठासार संग्रह में तीर्थंकर मूर्ति का ताल–मान दिया है,

उनका उल्लेख आशाधर ने किया है। उन्होंने तीर्थंकर के मस्तक पर क उष्णीय ताल–मान दिया है। यह विधान उन्होंने भी किया है तीर्थंकर–मूर्ति में शरीर और मुख पर केश नही होना चाहिये और वक्ष स्थल श्रीवस्स लांछन होना चाहिये। भुजाएं अजानु लम्ब हो, पद तलों पर शंख, चक्र, अंकुश, कमल, यव, छत्र आदि का अंकन होना चाहिये। तीर्थंकरों की मूर्तियां या तो खड़ी (कायोत्सर्ग) हो या आसीन (पर्यकासन या पदमासन) जिन मूर्तियों के साथ साथ अष्ट– प्रतिहार्य भी दिखायें जाने का विधान है।[9]

विभिन्न तीर्थकर मूर्तियों की पहचान उनके आसनों के ऊपर या नीचे अंकित लांछनों से होती हैं दोनो सम्प्रदाओं में इन प्रतीकात्मक चिन्हों का विधान है पर यह विधान किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नही मिलता। केवल तिलोय पण्णत्ती में यह सूची है किन्तु इसका जो पाठ उपलब्ध है व उत्तरकालीन लेखकों द्वारा विकृत किया गया प्रतीत होता है। लांछनों के सम्बन्ध में जो प्राचीनतम उल्लेख दिगम्बर या श्वेताम्बर शास्त्रों में मिलता है वह इन दोनो सम्प्रदाओं के विभाजन के बाद का है। कुषाण काल की किसी भी जिन मूर्ति पर लांछन अंकित नही है। नेमिनाथ की एक राजगिर से प्राप्त एक अशतः खण्डित मूर्ति पर लांछन अंकित है और चन्द्रगुप्त के उल्लेख सहित एक गुप्तकालीन अभिलेख भी उस उत्कीर्ण है पादपीठ के मध्य में खड़ें चक्रपुरूष की एक सुन्दर आकृति बनी है उसके पीछे चक्र और चक्र के दोनो ओर एक शंख है जो नैमिनाथ का चिन्ह है।[10]

जैन मूर्तिशास्त्र की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि चौबीस तीर्थंकरों के नामो के विषय में दोनो सम्प्रदाय पूर्णतया एकमत है। तीर्थकरों की नामवलि आगमों में आई है जैसे कल्पसूत्र में आवश्यक सूत्र के लोगस्स सुत्त भगवती सूत्र में स्थानांग सूत्र में उनके वर्णो का उल्लेख है। दिगम्बर के अनुसार उन्नीसवें तीर्थकर मल्लिनाथ पुरूष थे किन्तु श्वेताम्बरों का विश्वास है मल्लिनाथ स्त्री थी। मतभेद का कारण यह है कि दिगम्बरों के अनुसार स्त्री पर्याय से मुक्ति प्राप्त नही की जा सकती। यह मान्यता कदाचित इसलिये सबल होती गयी होगी क्योंकि सित्रियां निर्वस्त्र नही हो सकती और वे त्याग की पराकाष्ठा अर्थात जिन कल्प का पालन नही कर सकती। इस प्रकार उन्नीसवें तीर्थकर को पुरूष या स्त्री माने जाने का प्रश्न मुख्यतः श्वेताम्बर दिगम्बर मतभेद अर्थात अचेलकत्व पर निर्भर है।[11]

तीर्थकरों की मूर्तियां मणियों, धातुओं, पाषाणों, काष्ठ और मिटटी से बनायी जाती थी। इन द्रव्यों के चुनाव के सम्बन्ध में आचार–दिनकर मे कुछ

नियमों का विधान है। इस ग्रन्थ के अनुसार मूर्ति स्वर्ण, रजत या ताम्र की बनानी चाहिये पर कास्य शीशा या टिन की कभी नही बनानी चाहिये। कभी–कभी मूर्तियों के ढालने में पीतल का उपयोग कर लिया जाता है यद्यपि साधारण नियम यही है मिश्रित धातु का प्रयोग नही किया जाये। मूर्ति यदि काष्ठ की बनायी हो तो केवल श्रीपर्णी (खंभारी) चंदन, विल्ब, कदम्ब लाल चन्दन, दियाल, कभी–कभी शीशम का प्रयोग करना चाहिये। पाषाण भी सभी दोषो से रहित हो वह श्वेत हल्के हरे, लाल, काले या हरे रंग का हो सकता है। मिट्टी की मूर्ति के लिये गोबर ऐसा होना चाहिये जो धरती पर गिरने से पहले ही हाथ पर ले लिया गया हो और वह उसमें जो मिटटी मिलायी जाय वह स्वच्छ स्थान से ले आयी जानी चाहिये फिर भी यह विधान है कि अपनें कल्याण का इच्छुक गृहस्थ आवास गृह में लोहे, पाषाण, काश्ठ, मिट्टी गजदंत या गोबर से बनायी गयी चित्रित मूर्ति की पूजा न करें।[12]

ऐसी मूर्तियां स्थापित नही कि जानी चाहिये जो सदोष हो। टूट या फूट जाने से जिन्हे जोड़ा गया हो या फिर जो अत्यन्त जीर्णशीर्ण हो गयी हो। आवास गृह में स्थापित मूर्ति एक वितस्ति बेतियां से कुछ बड़ी होनी चाहिये।[13] आचार–दिनकर में लिखा है कि सार्वजनिक मन्दिर में बारह अंगुल से बड़ी नही होनी चाहिये यदि गृहस्थ अपना हित चाहता हो।[14] धातु से ढली हुई या चीनी मिटटी से बनी हुई मूर्तियां टूटने फूटने पर जोड़कर रखी जा सकती है और उनकी पूजा की जा सकती है। किन्तु कष्ठ या पाषाण की मूर्तियां को टूटने फूटने पर जोड़ने पर पूजा के लिये नही रखा जाना चाहिये। किन्तु एक सौ वर्ष से अधिक प्राचीन हो प्रतिमा किसी महान व्यक्ति ने करायी हो उनकी पूजा की जा सकती है चाहे वह खण्डित ही क्यों न हो पर उन्हे सार्वजनिक मन्दिरों में ही स्थापित करना चाहिये गृह चैत्यों में नही।[15]

तीर्थंकर या बुद्ध की सभी मूर्तियां महापुरूष लक्षणों की मूल अवधारणा पर आधारित है। परोक्ष रूप से प्रतीत हेाता है कि जैन अवधारणा में उष्णीय तो था पर ऊर्णा नही। अब तक ज्ञात या प्रकाशित तीर्थंकर–मूर्तियों में आधा दर्जन ही अधिक से अधिक ऐसी होगी जिनमें उर्णा का अंकन है उष्णीय का अंकन प्रायः सभी मूर्तियों में निरन्तर हुआ, परन्तु मथुरा और अन्य स्थानों में ऐसी मूर्ति भी मिली है जिनमें वह नही है। ललाट पर गोल तिलक का अंकन बहुत कम हुआ है इसका एक उदाहरण मथुरा में मिलता है। यह जैन विवरण स्थिरमति के ग्रन्थ रत्न गोत्र विमाग में आयी बुद्वमूर्ति की अवधारणा के अत्यन्त अनुरूप है।[16]

तीर्थकर के शरीर का एक आदर्श किन्तु संक्षिप्त विवरण वासुदेव हिन्डी में भी है जो गुप्त काल का ग्रन्थ है।

जैन परम्पराओं के अनुसार तीर्थकर की कुछ असाधारण विशेषताएं अतिशय होती है[17] परन्तु समवायांगसूत्र आदि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित अतिशयों की नामावलि से अष्ट महाप्राति हार्यों को पृथक नही रखा गया है जो तीर्थकर मूर्ति के परिकर के रूप में सर्वत्र अंकित किये जाते हैं। महाप्राति हार्यो के रूप में अंकित अतिशयों का प्रचलन तब आरम्भ हुआ। जब दोनो आम्नायों की मूर्तियों में एक सर्वांग पूर्ण परिकर की अनिवार्यवता मान ली गयी। यह प्रक्रिया क्रमिक थी, इसकी पुष्टि तब होती है जब कुषाण और गुप्त कालों की मूर्तियों की तुलना उत्तरगुप्त और मध्यकालों की मूर्तियों से की जाती है।

मूर्तिशास्त्र तथा अवशिष्ट कला–कृतियों से सिद्ध होता है कि जैन धर्म में देव–देवियों की मान्यता गुप्त काल के अनंतर अतितीव्र गति से विकसित हुई तांत्रिक प्रभाव बौद्व और हिन्दू धर्मो पर मध्य काल के आरंभ से पड़ रहा था। इस प्रवाह से जैन धर्म बच न सका जिसके फलस्वरूप इन्द्रनंदी ने ज्वालामालिनीकल्प, मल्लिषेण ने भैरवपदमावर्तीकल्प ओर शुभचन्द्र ने अंबिकाकल्प नामक ग्रन्थ लिखे जैन विधि विधानों पर हिन्दू कर्म–काण्ड का दुर्दम प्रभाव पड़ा जिसका प्रमाण है आशाधर (दिगम्बर) का प्रतिष्ठता का प्रतिष्ठासाराद्वार पादलिप्त की निर्वाण कलि का और वर्धमान सूरि श्वेताम्बर का आज्ञार–दिनकर। जैनेन्तर तत्वों से आपूर्ण तांत्रिक प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि वह मतिसागर के ग्रन्थ विद्यानुशासन (लगभग सोलह शताब्दी) में प्रकट हुआ जो अब भी अप्रकाशित है। इन ग्रन्थों और दोनो आम्नानों के अनेक प्रतिष्ठता ग्रन्थों में जैन मूर्तिशास्त्र की अपार सामाग्री विद्यमान है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश कन्नड, तमिल आदि के जैन पुराण जैन मूर्तिशास्त्र के अध्ययन के समृद्व स्त्रोत है। स्त्रोत ग्रन्थों और साथ साथ आख्यान ग्रन्थों में भी इस विषय की सामाग्री विद्यमान है। आरंभिक ग्रन्थ मानसार के अतिरिक्त अपराजितपृच्छा, देवतामूर्ति प्रकरण, अपमण्डन ठक्कुर, फेस का वास्तुकार आदि शिल्प ग्रन्थ अत्यंत महत्वूपर्ण है जिनमें जैन मूर्तिशास्त्र के अध्ययन की सामग्री विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भगवती सूत्र, 3,2 सूत्र 145 पृ0 175
2. घोष, अमलानन्द, जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड 9, पृ0 74 भारतीय ज्ञा0 पी0
3. मुनि, कान्तिकुमार खण्डहरों का वैभव पृ0 45–49
4- Times of India, 19th March 1984
5. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान में मूर्तिकला, वाराणसी 1981 पृ0–161
6. एपी ग्राफिया इण्डिका 1,1893–198 ल्युडर्स एच0 लिस्ट आफ ब्राहमी इसक्रिप्शन 1912 क्रमांक 93
7. वराहमिहिर कृत वृहत संहिता बंगलौर 1947, 58, 45
8. उमाकांत प्रेमानन्द शाह का लेख 'दि ऐज आफ डिफरेन्र्शएशन आफ स्वेताम्बर एण्ड दिगम्बर इमेजेज बुलेटिन' आफ दि प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई 1950–51 पृ0 30
9. प्रतिष्ठता सार संग्रह पाण्डुलिपि अध्याय–4, श्लोक 1,2,4,64,69
10. अकिर्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट 1925–26 कलकत्ता
11. घोष, अमलानन्द, जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड तीन पृ0 484 भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 1975
12. आचार–दिनकर, भाग 2 पृ0 143 श्लोक 4–11
13. प्रतिष्ठता सारोद्वार 1,83, पृ0 9
14. आचार–दिनकर, 2 पृ0 142
15. स्थानांगसूत्र 4 सूत्र 307
16. जनरल आफ द विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, 36 पृ0 1,11–19 अध्याय 3
17. जैन, चम्पतराय, 'आउट लाइन आफ जैनिज्म' पृ0 129–30

****